NAME – ATUL KUMAR MISHRA

COURSE – YOGA VOLUNTEER TRAINING COURSE

ASSIGNMENT WORK

योग का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, प्रकार और महत्व

योग शब्द का शाब्दिक अर्थ जोड़ना या मलन कराना है । योग शब्द के इस अर्थ का भारतीय संस्कृति में बहुत अ धक प्रयोग कया गया है । जैसे ग णत शास्त्र में दो या दो से अ धक संख्याओं के जोड़ का योग कहते है । च कत्सा शास्त्र में व भन्न औष धयों के मश्रण को योग कहते है, ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों की व भन्न स्थितियों को योग कहते है । इस प्रकार से बहुत से अन्य क्षेत्रों में योग शब्द का व भन्न अर्थों में प्रयोग कया गया है। कन्तु हम आध्यात्मिक क्षेत्रों में इस शब्द के अर्थ पर वचार करते है तो वहाँ उसका अर्थ अपने आप से युक्त होना अर्थात् अपने स्वरूप में स्थिर हो जाना या जीवात्मा का परमात्मा से मलन योग कहा जाता है ।

योग दर्शन में कहा है - "तंद्रा द्रश्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।" जब चत का क्लिष्ट और अक्लिश्ट उभय प्रकार की वृतियों का अभाव या निरोध हो जाता है तब द्दश्टा-आत्मा का स्व स्वरूप यानि ब्रह्मस्वरुप में स्थित हो जाता है ।
योग शब्द को संस्कृत व्याकरण के 'युज' धातु से उत्पन्न हुआ मानते है ।

संस्कृत व्याकरण के पा णनी के गण पाठ में युज धातु तीन प्रकार से प्रयोग में लायी गई है जो इस प्रकार है - "युज समाधौ' - (दिवादिगणीय) "युजिर योगे" - (अधदिगणीय) "युज संयमने' - (चुरादिगणीय) इनमें प्रथम धातु का अर्थ समा ध है, द् वतीय धातु का अर्थ मलन या संयोग तथा तृतीय धातु का अर्थ संयम है ।

योग का अर्थ

अ धकतर वद्वानों ने आध्यात्मिक क्षेत्र में योग शब्द का अर्थ प्रथम "धातु" युज समाधौ से ही निष्पन्न हुआ माना है । मह र्ष व्यास भी योग शब्द का अर्थ करते हुए कहा है क

समा ध को ही योग कहते है । 'योग' शब्द की उत्प त्त संस्कृत भाषा के युजिर् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है-'सम्मि लत होना' या 'एक होना'। इस एकीकरण का अर्थ जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मान सक, बौद् धक तथा आध्यात्मिक पक्षों के एकीकरण से लया जा सकता है।

'योग' शब्द 'युज' धातु से बना है। संस्कृत व्याकरण में दो युज् धातुओं का उल्लेख है, जिनमें एक का अर्थ जोड़ना तथा दूसरे का मन: समा ध, अर्थात् मन की स्थिरता है। अर्थात् सामान्य रीति से योग का अर्थ सम्बन्ध करना तथा मान सक स्थिरता करना है। इस प्रकार लक्ष्य तथा साधन के रूप में दोनों ही योग हैं। शब्द का उपयोग भारतीय योग दर्शन में दोनों अर्थों में हुआ है।

योग शब्द का अर्थ भन्न-भन्न प्रकार से लया गया है। 'पा णनीयों धतु पाठ' में योग का अर्थ- समा ध, संयोग एवं संयमन है।

'अमर कोश' में इसका अर्थ- कवच, साम-दाम आदि उपाय, ध्यान, संगति, युक्ति है।

'संस्कृत-हिन्दी कोश' में इसका अर्थ- जोड़ना, मलाना, मलाप, संगम, मश्रण, संपर्क, स्पर्श, संबंध है।

'आकाशवाणी शब्द कोश' में इसका अर्थ- जुआ, गुलामी, बोझ, दबाव, बन्धन, जोड़ना, नत्थी करना, बाँध देना, जकड़ देना, जोतना, जुआ डालना, गुलाम बनाना लया गया है।

'मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश' में योग का अर्थ- चन्तन, आसन, बतलाया गया है। 'शब्द कल्पद्रुम' में योग का अर्थ- उपाय, ध्यान, संगति, है। 'ए प्रक्टिकल वैदिक डक्सनरी' में योग शब्द का अर्थ- जोड़ना है। 'उर्दू-हिन्दी शब्द कोश' में योग शब्द का अर्थ- बैल की गर्दन पर रखा जाने वाला जुआ बतलाया गया है।

'योग' शब्द का सम्बन्ध 'युग' शब्द से भी है जिसका अर्थ 'जोतना' होता है, और जो अनेक स्थानों पर इसी अर्थ में वैदिक साहित्य में प्रयुक्त है। 'युग' शब्द प्राचीन आर्य-शब्दों का प्रतिनि धत्व करता है।

यह जर्मन के जोक, (Jock) ऐंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxon) के गेओक (Geoc), इउक (Iuc), इओक (Ioc), लैटिन के इउगम (Iugum) तथा ग्रीक जुगोन (Zugon) की समकक्षता या समानार्थकता में देखा जा सकता है। ग णतशास्त्र में दो या अ धक संख्याओं के जोड़ को योग कहा जाता है।

पा णनी ने 'योग' शब्द की व्युत्प त्त 'युजिर् योगे' ,'युज समाधो' तथा 'युज् संयमने' इन तीन धातुओं से मानी है। प्रथम व्युत्प त्त के अनुसार 'योग' शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग कया गया है।,

जैसे - जोड़ना, मलाना, मेल आदि। इसी आधार पर जीवात्मा और परमात्मा का मलन योग कहलाता है। इसी संयोग की अवस्था को "समा ध" की संज्ञा दी जाती है जो क जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है।

मह र्ष पतंज ल ने योग शब्द को समा ध के अर्थ में प्रयुक्त कया है। व्यास जी ने 'योग: समा ध:' कहकर योग शब्द का अर्थ समा ध ही कया है।

योग की परिभाषा

योग की परिभाषा योग शब्द एक अति महत्वपूर्ण शब्द है जिसे अलग-अलग रूप में परिभा षत कया गया है।

1. पातंजल योग दर्शन के अनुसार- योगष्चित्तवृ त्त निरोध: अर्थात् चत्त की वृ त्तयों का निरोध ही योग है।

2. मह र्ष पतंज ल-

‘योगष्चित्तवृ त्तनिरोधः’ यो.सू.1/2

अर्थात् चत्त की वृ त्तयों का निरोध करना ही योग है। चत्त का तात्पर्य, अन्त:करण से है। बाह्मकरण ज्ञानेन्द्रियां जब वषयों का ग्रहण करती है, मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है। आत्मा साक्षी भाव से देखता है। बुद् ध व अहंकार वषय का निश्चय करके उसमें कर्तव्य भाव लाते है। इस सम्पूर्ण क्रया से चत्त में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वही वृ त्त कहलाता है।

यह चत्त का परिणाम है। चत्त दर्पण के समान है। अत: वषय उसमें आकर प्रतिबिम्बत होता है अर्थात् चत्त वषयाकार हो जाता है। इस चत्त को वषयाकार होने से रोकना ही योग है।

योग के अर्थ को और अ धक स्पष्ट करते हुए मह र्ष पतंज ल ने आगे कहा है-

‘तदा द्रश्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्।। 1/3

अर्थात योग की स्थिति में साधक (पुरूष) की चत्तवृ त्त निरूद्धकाल में कैवल्य अवस्था की भाँति चेतनमात्र (परमात्म) स्वरूप रूप में स्थित होती है।

मह र्ष पतंज ल ने योग को दो प्रकार से बताया है- 1. सम्प्रज्ञात योग 2.असम्प्रज्ञात योग सम्प्रज्ञात योग में तमोगुण गौणतम रूप से नाम रहता है। तथा पुरूष के चत्त में ववेक-ख्याति का अभ्यास रहता है। असम्प्रज्ञात योग में सत्त्व चत्त में बाहर से तीनों गुणों का परिणाम होना बन्द हो जाता है तथा पुरुष शुद्ध कैवल्य परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

3. सांख्य दर्शन के अनुसार-

पुरुशप्रकृत्यो र्वयोगे प योगइत्य मधीयते।

अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्था पत कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।

4. मह र्ष याज्ञवल्क्य -

'संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो।'

अर्थात जीवात्मा व परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम ही योग है। कठोशनिषद् में योग के वषय में कहा गया है-

'यदा पंचावतिश्ठनते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद् धष्च न वचेश्टति तामाहु: परमां गतिम्।।
तां योग मति मन्यन्ते स्थिरा मन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ।। कठो.2/3/10-11

अर्थात् जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थिर हो जाती है और मन निश्चल बुद् ध के साथ आ मलता है, उस अवस्था को 'परमगति' कहते है। इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग है। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती है, अर्थात् प्रमाद हीन हो जाता है। उसमें सुभ संस्कारो की उत्प त्त और अशुभ संस्कारों का नाश होने लगता है। यही अवस्था योग है।

5. मैत्रायण्युपनिषद् -

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च.।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्य भधीयते।। 6/25

अर्थात प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्म वषयों से वमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

6. योग षखोपनिषद् -

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा। सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवंतुद्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।। 1/68-69

अर्थात् अपान और प्राण की एकता कर लेना, स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्ड लनी को स्वरेत रूपी आत्मतत्त्व के साथ संयुक्त करना, सूर्य अर्थात् पंगला और चन्द्र अर्थात् इड़ा स्वर का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मलन योग है।

7. लंड्ग पुराण के अनुसार - लंग पुराण में मह र्ष व्यास ने योग का लक्षण कया है क -

सर्वार्थ वषय प्राप्तिरात्मनो योग उच्यते।

अर्थात् आत्मा को समस्त वषयों की प्राप्ति होना योग कहा जाता है। उक्त परिभाषा में भी पुराणकार का अ भप्राय योग सद्ध का फल बताना ही है। समस्त वषयों को प्राप्त करने का सामर्थ्य योग की एक वभूति है। यह योग का लक्षण नहीं है। वृ त्तनिरोध के बिना यह सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता।

8. अग्नि पुराण के अनुसार - अग्नि पुराण में कहा गया है क

आत्ममानसप्रत्यक्षा व शष्टा या मनोगति:तस्या ब्रह्म ण संयोग योग इत्य भ धीयते।। अग्नि पुराण (379)25

अर्थात् योग मन की एक व शष्ठ अवस्था है जब मन मे आत्मा को और स्वयं मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता आ जाती है, तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है।

संयोग का अर्थ है क ब्रह्म की समरूपता उसमे आ जाती है। यह कमरूपता की स्थिति की योग है। अग्नि पुराण के इस योग लक्षण में पूवेक्ति याज्ञवल्क्य स्मृति के योग लक्षण से कोई भन्नता नहीं है। मन का ब्रह्म के साथ संयोग वृ त्तनिरोध होने पर ही सम्भव है।

9. स्कन्द पुराण के अनुसार - स्कन्द पुराण भी उसी बात की पुष्टि कर रहा है जिसे अग्निपुराण और याज्ञवल्क्य स्मृति कह रहे है। स्कन्द पुराण में कहा गया है क-

यव्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्म परमात्मनो:।
सा नष्टसर्वसकल्प: समा धर मद्यीयते।।
परमात्मात्मनोयोडयम वभाग: परन्तप।
स एव तु परो योग: समासात्क थतस्तव।।

यहां प्रथम "लोक में जीवात्मा और परमात्मा की समता को समा ध कहा गया है तथा दूसरे "लोक में परमात्मा और आत्मा की अ भन्नता को परम योग कहा गया है। इसका अर्थ यह है क समा ध ही योग है। वृ त्तनिरोध की 'अवस्था में ही जीवात्मा और परमात्मा की यह

समता और दोनो का अ वभाग हो सकता है। यह वात नष्टसर्वसंकल्पः पद के द्वारा कही गयी है।

10. हठयोग प्रदी पका के अनुसार - योग के वषय में हठयोग की मान्यता का वशेष महत्व है, वहां कहा गया है क-

स लबे सैन्धवं यद्वत साम्यं भजति योगतः।
तयात्ममनसोरैक्यं समा धरभी घीयते।। (4/5) ह0 प्र0

अर्थात् जिस प्रकार नमक जल में मलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है ; उसी प्रकार जब मन वृ त्तशून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त कर लेता है तो मन की उस अवस्था का नाम समा ध है। यदि हम वचार करे तो यहां भी पूर्वोक्त परिभाषा से कोई अन्तर दृष्टिगत नही होता। आत्मा और मन की एकता भी समा ध का फल है। उसका लक्षण नही है। इसी प्रकार मन और आत्मा की एकता योग नही अ पतु योग का फल है।

पतंज ल योगसूत्र में योग की परिभाषा

अन्य ग्रन्थों की भांति योग सूत्र क्यों क योग पर ही आधारित है, अतः वह प्रारम्भ में ही योग को परिभा षत करता है। समा ध पाद में योग की परिभाषा कुछ इस प्रकार बतायी गई है-

योगष्चित्तवृ त्त निरोधः ।। (पातंजल योग सूत्र, 1/2)

योग, चत्त वृ त्तयों का निरुद्ध होना है। अर्थात् योग उस अवस्था वषेश का नाम है, जिसमें चत्त में चल रही सभी वृ त्तयां रूक जाती हैं। यदि हम और अ धक जानने का प्रयास करें तो व्यास-भाष्य मे हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है क योग समा ध है। इस प्रकार जब चत्त की सम्पूर्ण वृ त्तयां व भन्न अभ्यासों के माध्यम से रोक दी जाती है, तो वह अवस्था समा ध या योग कहलाती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है, क योग को परिभा षत करने के लए

युज् धातु के कौन से अर्थ का प्रयोग कया गया है। जैसा क आपने पहले देखा, युज् धातु तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है। यहाँ युज् धातु समा ध अर्थ में प्रयोग हो रही है। अतः योग की परिभाषा के लए यहां युज् समाधौ वाला प्रयोग ठीक है।

हमारा चत्त तरह-तरह की वस्तुओं, दृश्यों, स्मृतियों, कल्पनाओं आदि में हमेशा उलझा रहता है। इन दृश्यों, स्मृतियों, कल्पनाओं, वस्तुओं आदि को वृ त्त भी कहा जा सकता है। यहाँ पर आपको समझाने के लए केवल इतना बताना चाहते हैं क जब हमारा चत्त इन सभी वृ त्तयों से बाहर आ जाता है, या जब चत्त में कसी भी प्रकार की हलचल नहीं होती तब वही स्थिति योग कहलाती है। इसमें बहुत से स्तर आते हैं। इन स्तरों को योग में व भन्न उपलब्धियों के माध्यम से समझा जा सकता है। अंतिम उपलब्धि जिसमें की चत्त में कोई भी हलचल न हो, वह एक शान्त सरोवर की भांति हो, ऐसी स्थिति को चत्त का समा ध में होना कहलाता है। यही स्थिति योग भी है क्यों क ऊपर हम बता आए हैं क योग को ही समा ध कहा गया है। यहां ध्यान देने की बात यह है क योग को समा ध पातंजल योग में कहा गया है। अन्य ग्रन्थों में योग की परिभाषा उन ग्रन्थों के अनुसार अलग हो सकती है।

अतः सारांश में हम यह कह सकते हैं क पातंजल योग सूत्र में योग, चत्त की सम्पूर्ण वृ त्तयों का निरोध है या चत्त का बिलकुल शान्त हो जाना है जो समा ध की अवस्था भी कहलाती है।

योग के उद्देश्य

1. मान सक शक्ति का वकास करना।
2. रचनात्मकता का वकास करना।
3. तनावों से मुक्ति पाना।
4. प्रकृति वरोधी जीवनशैली में सुधार करना।
5. वृहत-दृष्टिकोण का वकास करना।
6. मान सक शान्ति प्राप्त करना।
7. उत्तम शारीरिक क्षमता का वकास करना।

8. शारीरिक रोगों से मुक्ति पाना।
9. मदिरापान तथा मादक द्रव्य व्यसन से मुक्ति पाना।
10. मनुष्य का दिव्य रूपान्तरण।

योग के प्रकार

योग के कतने प्रकार हैं, योग कतने प्रकार के होते हैं भारतीय योग शास्त्रियों ने योग को 8 प्रकार का बतलाया है-

1. हठयोग
2. लययोग
3. राजयोग
4. भक्तियोग
5. ज्ञानयोग
6. कर्मयोग
7. जपयोग
8. अष्टांगयोग

1. हठयोग

प्राचीन समय में हठयोग में सद्ध महात्मा घेरण्ड हुए हैं। इन्होंने अपने शष्य चण्डकपा ल को क्रयात्मक रुप से समझाने के लए घेरण्ड संहिता पुस्तक की रचना की जो आज भी उपलब्ध है। यह हठयोग का एक प्रामा णक एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें हठयोग के सात अंगों षट्कर्म आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समा ध का वर्णन है ।

हठयोग में शारीरिक क्रयाओं का समावेश है शरीर को शट्चक्र भेदन के लए उपयुक्त करने के लए गौरक्षनाथ जी ने कई मुद्राओं पर बल दिया है जैसे काकी मुद्रा (जिव्हा को कौऐ की चोंच के समान कर प्राण वायु पान करना) खेचरी मुद्रा (जीभ को जिव्हामूल की ओर पलटकर वायुपान करना) उसके बाद चौरासी आसनों का निष्पन्न करना। मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध जालन्धर बन्ध लगाना आदि ।

2. लययोग

योग के आचार्यों ने लय को भी ईश्वर प्राप्ति का एक साधन माना है इसका अर्थ है- "मन को आत्मा में लय कर देना, लीन कर देना।"

"आनंद तः पष्यन्ति वद्वांसस्तेन लयेन पष्यन्ति।"

"वे वद्वान पुरुष उसे आनन्द (आत्मा) स्वरुप देखते हुए उनमें लय हो जाते हैं और फर उससे भन्न उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई देता " इस प्रकार ज्ञान द्वारा सत्य की खोज करते करते मनुष्य आत्मा तक पहुँच जाता है और वह देखता है क केवल यह मेरा मन ही नहीं, सभी लोक लोकान्तर उसी में लीन हैं। यह आत्मा ही परमात्मा है दोनों में कोई भेद नहीं, यही लय योग है।

3. राजयोग

"राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः" ।

स्मृतियों में ऐसा कहा गया है क सभी योग साधनों में श्रेष्ठ होने के कारण तथा सभी योग प्र क्रयाओं का राजा होने के कारण इसे राजयोग कहा गया है।"राजयोग का ध्यान ब्रह्म ध्यान, समा ध को नि र्वकल्प समा ध तथा राजयोग में सद्धमहात्मा, जीवनमुक्त कहलाता है राजयोग के सम्बन्ध में सर्वा धक प्रमा णत ग्रन्थ मह र्ष पतंज ल द्वारा र चत योगदर्शन है। ऐसा कहा जाता है क चत्त की चंचलता को दूर कर, योग एवं सद्धयोग का अवधारणात्मक पहलू मन को एकाग्र तथा बुद् ध को स्थिर करके जीवात्मा को परमात्मा में वलीन करने की जो साधना है वह स्वयं ब्रह्मा ने वेदों के द्वारा ऋ षयों की बताई।

कुछ योगशास्त्र ने राजयोग को सोलह कलाओं से पूर्ण माना है अर्थात् 16 अंग माने हैं। सात ज्ञान की भू मकाएं, दो प्रकार की धारणा - प्रकृति धारणा और ब्रह्मधारणा, तीन प्रकार का ध्यान - वराट ध्यान, ईष ध्यान और ब्रह्मध्यान, तथा चार प्रकार की समा ध - दो स वचार

और दो नि र्वचार अर्थात् वतर्कानुगत, वचारनुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत। इस क्रम से साधनाकरता हुआ राजयोगी अपने स्वरूप को प्राप्त करके इसी जीवन में मुक्त हो जाता है ।

4. भक्ति योग

निष्काम कर्म अर्थात कर्म करते हुए कर्मफल की आकांक्षा नहीं रखते हैं। भक्ति मार्ग का पालन करने से साधक को ईश्वर की अनुभूतिस्वयं होने लगती है। गीता में कहा है-

“पत्रं पुष्प फलं तोयंयो में भक्तया प्रयच्छति “

“अर्थात पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि को कोई भक्त मेरे लए प्रेम से अर्पण कर देता है उसे मैं अत्यन्त खुशी से स्वीकार करता हूँ।”

5. ज्ञानयोग

संसार में ज्ञान से बढ़कर कुछ भी प वत्र नहीं है। गीता-” नहि ज्ञानेन सदृषंप वत्र मह वद्यते”दो प्रकार का ज्ञान होते है - ता र्कक ज्ञान- आध्यात्मिक ज्ञान-ता र्कक ज्ञान को वज्ञान कहा जाता है यह वस्तु के आभास में सत्यता के निरुपद के लए कया जाता है इसमें ज्ञाता और ज्ञेय का ज्ञान रहता है।-आध्यात्मिक ज्ञान को “ज्ञान” कहा जाता है इसमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद मट जाता है ऐसा व्यक्ति सब रूपों में ईश्वर देखता है।

6. कर्मयोग

यज्ञार्था कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनःगीता-तक्ष्थ कर्म कौन्तेय मुक्तासंगः समाचारः।।

योग एवं सद्धयोग का अवधारणात्मक पहलू यह संसार कर्म की श्रृंखला से बंधा हुआ है इस लए हे अर्जुन तू कर्म कर। स्वंययज्ञ की उत्पति कर्म से होती है खेतों में अन्न कर्म से ही

पैदा होता है अर्जुन तू अनासक्तहोकर कर्म कर क्यों क योगी लोग आत्म शुद् ध के लए कर्म करते हैं। प्रकृति के गुणों द्वारा ववश होकर हर एक को कर्म करने पड़ते हैं। कर्मों के फल से छुट्टी पाये बिना मुक्तिनहीं।

7. जप योग

जप एक दिव्य शक्ति का एक मंत्र या नाम है। स्वामी शवानंद के अनुसार जप योग एक महत्वपूर्ण अंग है जप इस कलयुग व्यवहार में अकेले शाश्वत शांति परमानंद व अमरता दे सकता है। जप अभ्यस्त हो जाना चाहिये और सात्विक भाव, प वत्रता, प्रेम और श्रद्धा के साथ लया जाना चाहिये। जप योग से बड़ा कोई योग नहीं है। यह आपको सभी (जो आप चाहते हैं) सत् सद्धी, भक्ति वमुिक्त प्रदान कर सकता है।

8. अष्टांग योग

मह र्ष पतंज ल ने पातंजल योग दर्शन, "अथयोग अनुषासनम्" शब्द से प्रारम्भ कया है इससे स्पष्ट है क उन्होंने जीवन के आदर्शों में अनुशासन को कतना महत्व दिया है। पंतज ल योग वकास, आठ क्रमों में होता है इस लए इसे अष्टांग योग भी कहते हैं । अष्टांग योग के अंतर्गत आठ अंग बताये गये हैं।

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समा ध

उपरोक्त आठ अंगों का अभ्यास करने से पूर्व व्यक्तियों को षट्कर्म करना अतिआवश्यक होता है षट्कर्म निम्न प्रकार से बताये गये हैं -

1. नेति
2. नौ ल
3. धौति
4. वस्ति
5. कपाल भाति
6. त्राटक

योग के तत्व

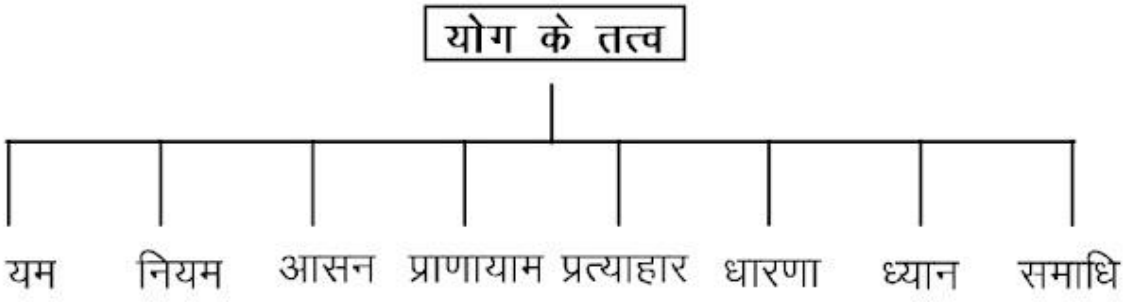

योग का महत्व